मगसिर शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक २५-१२-१९७४, श्लोक-७, प्रवचन-१५

बहिरात्मा क्या मानता है और उसे बहिरात्मा क्यों कहना ? यह व्याख्या चलती है।

टीका - इन्द्रियोंरूप द्वारों से अर्थात् इन्द्रियोंरूप मुख से.... इसकी.... है। इन्द्रियों के मुख से अर्थात् उन द्वारों से। आहाहा! **बाहर के पदार्थों के ग्रहण में रुका हुआ होने से,...** ग्रहण अर्थात् जानना। समझ में आया ? गुजराती है। अभी हिन्दी नहीं चलता। यह गुजराती है न। सवेरे हिन्दी चलता है। यह तो गुजराती पाठ है न। यह समझ में न आये ऐसा है। अभी गुजराती है। पुस्तक गुजराती है। और सवेरे हिन्दी है। थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखना। गुजराती में है और गुजराती में आवे तो हिन्दी में ऐसा नहीं आता। रूकना पड़ता है।

यह आत्मा उसे कहते हैं कि जो बाह्य इन्द्रिय द्वारा.... एक तो भावेन्द्रिय जो है, वह क्षयोपशम की एक पर्याय है—ज्ञान की एक पर्याय है। उसे निमित्त द्रव्येन्द्रिय है। और उसे जानने की चीज़ वह निमित्त है। इसलिए यहाँ तो भावेन्द्रिय द्वारा और उसके द्रव्येन्द्रिय के मुख से अर्थात् उसकी ओर से जो बाह्य पदार्थ का ग्रहण-रूका हुआ हो। वहाँ बाहर के जानने में वह ज्ञान रूका है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि जो पर्याय के ऊपर जिसकी बुद्धि है, पर्याय के ऊपर, वह भावेन्द्रिय द्वारा, द्रव्येन्द्रिय उसमें भले निमित्त हो, परन्तु द्रव्येन्द्रिय की पर्याय और भावेन्द्रिय की पर्याय के बीच भी अत्यन्त अभाव है। तथापि वह इन्द्रिय द्वारा ऐसा जो जाता है जानने, तब उसे बाह्य पदार्थ का ज्ञान होता है। तो बाह्य पदार्थ के ज्ञान में वह रूका है। **वह बहिरात्मा-मूढ़ात्मा है।** जो यह आत्मा अपने ज्ञान की पर्याय से अन्तर्मुख होकर जानना चाहिए.... समझ में आया ? उसके बदले यह बाह्य इन्द्रियों का (उघाड़रूप) पर्याय जो भावेन्द्रिय है, वह वास्तव में आत्मा नहीं है। भावेन्द्रिय की पर्याय वह वास्तव में आत्मा नहीं है। क्योंकि उसे तो ऐसा कहा है कि उसे जीते वह जितेन्द्रिय कहा जाता है। उनसे जाने तो जितेन्द्रिय कहलाता है, ऐसा नहीं कहा। ३१वीं गाथा। इसलिए वह भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और उससे ज्ञात होते पदार्थ, इन तीनों को वास्तव में तो इन्द्रिय

कहा है। तीन को इन्द्रिय कहा। ३१ गाथा (समयसार)। आहाहा! अर्थात् कि इन्द्रिय का जो ज्ञान, इन्द्रिय द्वारा जो होनेवाला ज्ञान, वह इन्द्रिय (ज्ञान है)। द्रव्येन्द्रिय तो जड़ की पर्याय, भावेन्द्रिय चैतन्य क्षयोपशम का विकास, दो के बीच भी अत्यन्त अभाव है। और उससे जो जानने की चीज़ है वर्तमान पर्याय बाह्य, वह द्रव्य.... तो (दोनों के) बीच में भी, जानने की पर्याय को और ज्ञात हो, ऐसी चीज़ को अत्यन्त अभाव है। मूलचन्दभाई! यह सब इसमें गहरा उतरना पड़ेगा। आहाहा! उसे जानने में रूका हुआ ज्ञान.... आहाहा! वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। आहाहा! भाषा तो देखो! आचार्य ने कैसी शैली रखी है! आहाहा!

भगवान आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय द्वारा जिसकी वह पर्याय है, उसे जानना चाहिए। ज्ञान उसका लक्षण है। तो लक्षण द्वारा लक्ष्य को जानना चाहिए। समझ में आया? यह चैतन्यस्वरूप हूँ, यह ज्ञान द्वारा जानना चाहिए। ऐसा न जानकर उस पर्याय के मुख से बाह्य चीज़, बाह्य पदार्थ को जो जानता है, चैतन्य का उसमें अभाव है। वास्तव में तो वर्तमान भावेन्द्रिय की पर्याय में भी चैतन्यस्वभाव का अभाव है। द्रव्येन्द्रिय की पर्याय में चैतन्यस्वभाव का अभाव है। और सामने जाननेयोग्य जो पदार्थ है, उसकी पर्याय में या उसके द्रव्य-गुण में इस चैतन्य का तो अभाव है। आहाहा! तथापि उसे यह मानकर कि यह मेरा है, यह ज्ञान मुझे हुआ मुझमें और वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? वह बहिरात्मा है।

यह चैतन्य जो वस्तु है देह से भिन्न, राग से भिन्न, यह वस्तु जो आत्मा है— आत्मपदार्थ, उसकी मौजूदगी, उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता का अस्तित्व, वास्तव में तो शरीर के अस्तित्व से भी उसका अस्तित्व भिन्न है। वह जड़ है, वह मिट्टी। यह इन्द्रिया मिट्टी जड़ अजीव है। उसकी पर्याय से भी इसका भिन्नपना है। और वास्तव में तो राग होता है कोई दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, उस राग से भी इसका अस्तित्व भिन्न है। और एक समय की जो भावेन्द्रिय का क्षयोपशम है (उससे भी इसका अस्तित्व भिन्न है)। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! तत्त्व की ऐसी बातें हैं। दुनिया को कुछ पड़ी नहीं। मेरा क्या होगा? यह सब करते हैं और यह करना, उसमें उलझकर मर जाता है। आहाहा!

ऐसा तत्त्व जो है, उसे राग से, पर के जानने के लक्ष्य से अथवा पर से (हटकर).... आहाहा! अन्तर्लक्ष्य करके जो अपने को जानना चाहिए, इसका नाम सम्यग्ज्ञान, सम्यक् प्रतीति और सम्यक् आचरण कहा जाता है। आहाहा! वह सम्यक् प्रतीति, ज्ञान और आचरण को छोड़कर.... आहाहा! जो ज्ञान की दशा का वर्तमान विकास है, उसमें कहीं पूरा आत्मा नहीं है। पूरा तत्त्व तो एक समय की दशा से-हालत से भिन्न तत्त्व है। आहाहा! वह पर्यायबुद्धिवाले को यहाँ शरीरबुद्धिवाला कहते हैं। समझ में आया? कि जिसमें चैतन्य वस्तु भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप नित्यानन्द ध्रुव, उस ध्रुव का जिसमें लक्ष्य रहा नहीं और उसकी वर्तमान दशा के मुख से बाहर में देखने से बाह्य पदार्थ को जाने, उसे जाने, उसे माने कि यह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि जो अस्तित्व उसका अपना पूरा है—महाप्रभु चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पुंज प्रभु आत्मा, कहाँ देखना? किसे देखना? किसे पड़ी है अन्दर? आहाहा! अनन्त काल से क्यों भटकता है, यह बहिरात्मा की व्याख्या करते हैं।

भगवान आत्मा चैतन्यदल है। वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्तित्व चीज़ है। तो वह अस्तित्व अर्थात् मौजूदगीवाली चीज़, वह तो आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसे अस्तित्व को उसके सन्मुख देखे बिना.... बहिर्मुख कहा था न यहाँ? इन्द्रिय द्वार को मुख्य कहा। उन्होंने डाला है, टीका में ही डाला है। **इन्द्रियोंरूप द्वारों से अर्थात् इन्द्रियोंरूप मुख से...** उसे इन्द्रियमुख हो गया..... भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के रस से भरपूर वह तत्त्व आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा को अस्तिरूप से उसे देखने को न जाकर, उसकी अस्तित्वता का स्वीकार न करके वर्तमान विकास का अंश है, उस अंश द्वारा द्रव्येन्द्रिय को निमित्त बनाकर.... आहाहा! और पर को जाने, वह तो बाह्य पदार्थ को जानता है। उसमें चैतन्य नहीं आया। बस! भारी कठिन काम, भाई! ऐसी किसे निवृत्ति है? यह सब पाँच-पचास लाख पैसे (रुपये) मिले। ऐई... सेठ! पोपटभाई! यह करोड़, दो करोड़ मिले। क्या है?

मुमुक्षु : धूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है। आहाहा! किसे मिले? भाई! तुझे खबर नहीं। पैसा, वह जड़ चीज़ है। लक्ष्मी, पैसा वह जड़-अजीवतत्त्व है। वह अजीवतत्त्व अजीव में रहा हुआ है। वह अजीवतत्त्व जीव में आया और जीव में रहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! तथापि उस अजीवतत्त्व को देखने जाता है इन्द्रिय द्वारा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जानने जाये, इतनी बात यहाँ है न। ऐसे इन्द्रियों द्वारा पर के ऊपर लक्ष्य करके यह पदार्थ है.... यह पदार्थ है.... ऐसे जानने जाता है। ऐसे बहिर्मुख भाव को अज्ञानी अपना मानता है। वह मूढ़ है, वह मिथ्यादृष्टि है, वह झूठी असत्यदृष्टि का सेवन करनेवाला है, वह झूठे को सेवन करनेवाला है। वह सच्चे को सेवन नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

....भगवान आत्मा सच्चिदानन्द—सत् चिद् आनन्दकन्द है। यह आत्मा.... कहाँ किसे पड़ी है? यह कहाँ है? कौन है? ऐई! नौतमभाई! यह पैसे पैदा हों पाँच-पचास लाख, दस लाख, धूल लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। हो गया। हम बढ़ गये। दूसरे की अपेक्षा बढ़े। बाहुबल से (बढ़े) पिता के पास नहीं था और हमने स्वयं ने कमाया है। क्या कमाया? धूल? वह तो परचीज़ है। यह कमाने का तो नहीं परन्तु परचीज़ को देखने जाती जो ज्ञान की दशा.... आहाहा! वह परपदार्थ को जानती है। उसमें भगवान आत्मा रह गया। यह कहते हैं, देखो! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो अनन्त काल की भूल कैसे रही है और यह भूल मिटे बिना इसके जन्म-मरण मिटें, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह यह भूल रही कि जो महाप्रभु अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान के अस्तित्वपने विराजमान वस्तु आत्मा है। उसका अन्तर का जो स्वभाव है ज्ञान-आनन्द, उस ज्ञान द्वारा उसे नहीं जाना। उसके अस्तित्व को नहीं जाना और उस ज्ञान की वर्तमान पर्याय द्वारा जो दूसरा अस्तित्व, उससे भिन्न है, (उसे जानने में रूका)। ऐसा कहा न? देखो न! **बाहर के पदार्थों के ग्रहण में रुका हुआ होने से,....** उससे भिन्न पदार्थ को जानने में रुका। आहाहा! ऐई! कान्तिभाई! यह तो अवलदोम की बातें हैं। भाई! जगत के साथ मिलान नहीं खाता। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि जो वस्तु है—सत् अस्ति तत्त्व अनादि है। उसकी कोई उत्पत्ति नहीं,

उसका कोई नाश नहीं। सत् है, उसकी उत्पत्ति क्या ? और सत् है, उसका अभाव / नाश क्या ? आहाहा ! ऐसा जो सत् स्वरूप भगवान, उसकी दशा से—जिसकी वह पर्याय है और वह लक्षण है ज्ञान, उस ज्ञान के लक्षण द्वारा लक्ष्य अर्थात् प्रभु आत्मा को जानना चाहिए। तो वह आत्मज्ञान हुआ। इस ज्ञान की पर्याय द्वारा बाह्य पदार्थ में जानने में रुका हुआ आत्मज्ञान से वंचित है। आहाहा ! वह **आत्मज्ञान से पराङ्मुख....** है। ऐसी भाषा है न ?

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यघन है, उसके ज्ञान से पर द्वारा (होते) ज्ञान में रुका हुआ आत्मा के ज्ञान से ठगा गया है, वंचित है। आहाहा ! ऐई ! गिरधरभाई ! ऐसी बात है, बापू ! आहाहा ! वे कहे दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो.... क्या करे ? सुन न अब। वे तो सब विकल्प हैं। समझ में आया ? आहाहा ! यह राग और आत्मस्वभाव के बीच तो अत्यन्त अभाव है। यह तो आता है न ? यह राग जो होता है—दया, का, दान का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, भगवान का स्मरण करते हैं, वह सब राग है। वृत्ति का उत्थान है। वृत्ति उठती है वह राग है। उस राग में और कर्म के उदय में, जड़ का जो उदय है, उसकी पर्याय में और इस राग की पर्याय के बीच अत्यन्त अभाव है। तथापि इसके सद्भाव को जानने में रुक गया हुआ। आहाहा ! ऐई ! और उस राग को तथा भगवान आत्मा का जो ज्ञान होता है, स्वरूप चैतन्य का ज्ञान होता है, अनुभव होता है, ऐसी दशा को और राग को, दो के बीच भी अत्यन्त अभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? उसे, अन्तर अभावस्वभावरूप मेरा भाव है, उसे जानने नहीं आकर.... आहाहा ! वह ज्ञान की दशा बाह्य पदार्थ को उसके मुख द्वारा जानने में रुकी हुई.... आहाहा ! उसे यहाँ बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा ! चाहे तो नौ पूर्व का पढ़ा हुआ हो, ग्यारह अंग के जानपनेवाला हो। आहाहा ! परन्तु उस पदार्थ द्वारा तो बाह्य पदार्थ जाना। समझ में आया ? जब इसे चैतन्य कहते हैं, तो इस प्रकार परपदार्थ का जानना, वह सब अचेतन और शरीर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, **आत्मज्ञान से पराङ्मुख अर्थात् जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है।** आहाहा ! कैसी शैली रखी है ! जो वर्तमान ज्ञान के विकास के क्षयोपशम के अंश द्वारा

अर्थात् इन्द्रिय द्वारा। भावेन्द्रिय है न? पर को देखने में रुका हुआ, पर को पकड़ने में नहीं, भाई! .... यहाँ से लिया। मात्र ज्ञान पर को जानने में रुका हुआ। इतना कहा। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो तत्त्व की बातें हैं, बापू! इसमें अनन्त काल से यह जाना नहीं। बाकी सब चतुराई की और मर गया सब कर-करके। आहाहा! अरबोंपति अनन्त बार हुआ मनुष्य होकर। क्या किया? पाखण्ड सेवन किया— मिथ्यात्वभाव सेवन किया। आहाहा!

यहाँ तो बाहर को जानने में रुका हुआ पर्यायवाले को बहिरात्मा कहते हैं। गजब बात है। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ जो अन्दर है, भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मीवान, वह तेरा स्वरूप है। ऐसे ज्ञान और आनन्द के स्वरूप को देखने की पर्याय से देखा नहीं और वह पर्याय—देखने की पर्याय पर को देखने में रुक गयी। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मज्ञान से वंचित हो गया। आहाहा! यह भगवान अपने ज्ञान से पराङ्मुख हो गया। आहाहा! बापू! यह तो परमसत्य की बातें हैं। अर्थात् यह जरा ग्राह्य होना कठिन है। इसने अनन्त काल में यह किया नहीं। इसने सत्य सुना नहीं। सत्य सुना नहीं। ऐसा आता है न? भाई! श्रीमद् में आता है। ....इसका अर्थ कि यह वस्तु है... आहाहा! पूर्ण वस्तु है, उसकी शक्ति और स्वभाव तो पूर्ण है। वस्तु है न आत्मतत्त्व! आहाहा! वह परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसे ज्ञान द्वारा इसे देखना-जानना चाहिए, ऐसा छोड़कर, आत्मज्ञान से पराङ्मुख होकर.... आहाहा! अकेले शास्त्र को जानने गया इन्द्रिय द्वारा, वह बाह्य पदार्थ को जाना। आहाहा! सुजानमलजी! यह तो बातें ऐसी हैं, बापू! जन्म-मरण से छूटने की पद्धति कोई अलौकिक है। और जन्म-मरण करने की पद्धति का भाव कोई साधारण नहीं है, अज्ञान बड़ा है।

कहते हैं, **वैसा होता हुआ....** भाषा ऐसी है न? क्या कहते हैं? कि इन्द्रियोंरूपी यह जड़ और अन्दर भावेन्द्रिय.... इस मुख से बाहर के पदार्थों को शरीर को, वाणी को, कर्म को, इस स्त्री को, कुटुम्ब को, पैसे को, इज्जत को, धूल और धमाका.... पोपटभाई! उन्हें जानने में रुका हुआ, कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा! इसका अर्थ हुआ कि उसे जानने में रुका हुआ अर्थात् वह मैं हूँ, ऐसा इसे हो गया। क्योंकि वह जो अस्तित्व है,

महाप्रभु, महा चैतन्य गंज आत्मा आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, उसके अस्तित्व को अस्तिरूप से स्वीकारने में नहीं आया, तब कहीं हूँ, ऐसे स्वीकार बिना यह किस प्रकार रहेगा ? समझ में आया ? ऐई ! टोलिया ! समझ में आया या नहीं यह ? गजब भाई ! ऐसी बात कहाँ से निकाली ? कहते हैं। कोई तो कहे, यह नयी निकाली है। अरे ! भगवान ! तुझे खबर नहीं, बापू ! यह तो भगवान की अनादि की बात है। आहाहा !

ओहोहो ! गाथा की शुरुआत करते हुए इन्द्रिय द्वारा.... आहाहा ! अतीन्द्रिय स्वरूप भगवान आत्मा। स्वयं तो अतीन्द्रिय स्वरूप है। इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा वह है नहीं। यह इन्द्रिय यह जड़ मिट्टी या भावेन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसे भगवान का ज्ञान न करके.... भगवान अर्थात् आत्मा, हों ! वापस दूसरे भगवान उनके घर रहे। वे भगवान कुछ देते नहीं और लेते नहीं। आहाहा !

अपना स्वभाव पूर्ण है, एकरूप है, सत्त्व है, महापूर्ण स्वभाव से अस्तिरूप से-सत्तारूप से-मौजूदगीरूप से रहा है। आहाहा ! ऐसे महा अस्तित्व के सत्ता को न जानकर यह आत्मज्ञान से विमुख होकर पराङ्मुख (हुआ)। देखा ! भाषा देखो ! आहाहा ! चन्दुभाई गये, नहीं ? गये। समझ में आया ? यह आत्मज्ञान जो आत्मा वस्तु है। किसका ज्ञान ? उस दशा में उसका ज्ञान। उसकी पर्याय में—अवस्था में उसका ज्ञान। उसका ज्ञान न होकर, उसमें नहीं है, ऐसी जो बाह्य चीज़ें, उनमें इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ को जानने से वहाँ ज्ञान रुका है। वह रुका, वह बहिरात्मा है, कहते हैं। आहाहा ! इसने शरीर को और बाह्य पदार्थ को मेरा माना। आहाहा ! समझ में आया ? जिसे देखने की गरज हुई, उसे अपना माना। स्वयं को देखने की गरज हो तो अपने को माने। आहाहा ! अरे ! मार्ग, यह मार्ग !

वह बहिर्भूत.... **जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है।** वह पर को जानने का भाव ही बहिर्मुख है। ऐसे चैतन्य भगवान... मूल की बातें बिना फिर व्रत करो, तप करो और अमुक (करो)। आज उपादान-(निमित्त) का बहुत बड़ा लेख आया है। बड़ा लेख आज आया है। जैनशासन में। कल आया था। समय मिले तब हो न। ऐसी गड़बड़ की है, यहाँ के विरुद्ध की। किसी आर्यिका ने लिखा है, दोनों से काम होता है। उपादान से

और निमित्त से। कोई कहे कि अकेले उपादान से होता है। अरे! सुन न! उपादान क्या, उसकी पर्याय से होता है। उसकी वर्तमान पर्याय द्रव्य से नहीं होती। आहाहा! अरे! क्या हो? जगत लुटाया है और लुटता है उत्साह से। उत्साह से लुटता है। निमित्त दूसरी चीज़ है। निमित्त दूसरी चीज़ है, परन्तु उसकी पर्याय का अस्तित्व और इसकी पर्याय का अस्तित्व—दो के बीच तो अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव जिसमें है, वह चीज़ यहाँ काम करे? बहुत कठिन बात है। पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े, काशी के पठन किये परन्तु आत्मा को पढ़ा नहीं वह। समझ में आया?

अरे! जन्म-मरण के दु:ख, बापू! चौरासी के अवतार.... आहाहा! यहाँ करोड़पति हो और जहाँ आँख बन्द हो जाये, ढेढगरोली के गर्भ में। आहाहा! पोपटभाई! यहाँ अरबोंपति हो। अरबोंपति अभी मर गया न? शान्तिलाल खुशाल। गोवा-गोवा। दशाश्रीमाली बनिया, नहीं? दो अरब चालीस करोड़। दो सौ चालीस करोड़। धूल का-जड़ का ढ़ेर। वह जड़ की पर्याय और आत्मा की दशा में अत्यन्त अभाव है।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि जिसका अत्यन्त अभाव है, उसे जानने में रुका हुआ ज्ञान। ऐसा कहना है। ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? जिनके बीच अत्यन्त अभाव है। यह दो अँगुलियाँ है या नहीं? देखो! इसमें इसका अभाव है, इसका इसमें अभाव है। नहीं तो दो स्वतन्त्र नहीं रह सकेगी। स्वयं अपने से रही है और इस अंगुली से रही नहीं है। यदि इससे रही हो तो अँगुली टूटने से यह भी टूट जानी चाहिए।

इसी प्रकार आत्मा अपने स्वभाव के अस्तित्व से रहा हुआ है। वह पर के अस्तित्व से और राग के अस्तित्व से रहा है, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह सब स्त्री, पुत्र, परिवार, निर्वाह करनेवाले लड़के। पोपटभाई! तुम्हारे छह-छह लड़के। खम्मा-खम्मा करके। वह.... तब कोई नहीं आया था। आहाहा! अरे! दुनिया! जिसे देखना है, उसे देखता नहीं। जो चीज़ तुझमें है, उसे तू देखता नहीं और जो तुझमें नहीं, उसे देखने में रुका हुआ है। भाषा प्रयोग की, देखो न! आहाहा! वह बहिरात्मा है। समझ में आया? बहिर् वस्तु को वह जानने में रुका हुआ, उसे बहिरात्मा कहते हैं। मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ़ है। आहाहा! यह सब एल.एल.बी. के

पूंछड़े लगाये हों न। एम.ए. के और यह वकील सब बड़े.... आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! एक बार शान्ति से सुन, भगवान! तेरी चीज़ के अन्दर अस्तिवाला पदार्थ और जिसमें वह चीज़ नहीं और उस चीज़ में तू नहीं। बराबर है? यह शरीर मिट्टी है, यह तो मिट्टी-धूल है। इसमें कहाँ आत्मा है? और आत्मा में शरीर है? आत्मा चैतन्यमूर्ति और यह तो जड़रूप है। ऐसे स्त्री, पुत्र, परिवार, देश में यह आत्मा है वहाँ? और आत्मा हैं वे? और उनके कारण आत्मा रहा हुआ है? आहाहा! ऐसा जो आत्मा। यहाँ तो पहली भाषा में ऐसा डाला है। आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। यह क्या कहते हैं? पर को जानने के ज्ञान में रुका हुआ आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। आहाहा! यह समाधिशतक चलता है, भाई! समाधिशतक है। पूज्यपादस्वामी का है। ....आये हैं सब विनती करने। यह श्रद्धावाले हैं। जिज्ञासु हैं। इनके पण्डित.... तुम। मार्ग यह है, बापू! इसमें पण्डित क्या करे? पढ़-पढ़कर पण्डित (हो गये)। पण्ड्या पण्ड्या छिलका खण्ड्या। आहाहा!

भगवान चिदानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, जिसकी पूर्ण शक्तियाँ एक-एक, ऐसा पूर्ण रूप जिसका, उसके ज्ञान से पराङ्मुख होकर.... आहाहा! जो इसमें नहीं उसके ज्ञान में जानने में रुका हुआ। आहाहा! उसे बहिरात्मा (कहते हैं)। अन्तरात्मा है, वह पड़ा रहा उसे। वह बहिरात्मा मूढ़ अज्ञानी चार गति में भटकनेवाला। चाहे तो राजा हो, चाहे तो महन्त हो और चाहे तो काशी में पढ़ा हुआ बड़ा पण्डित हो। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सन्त-दिगम्बर मुनियों की क्या बात! आहाहा! एक-एक शब्द में कितनी गम्भीरता! कितना रहस्य भरा है!! बात करते हैं साधारण ऐसी मानो। बहिरात्मा इन्द्रिय द्वारा परपदार्थ को जानता है, इतना। वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। यह तो मन्त्र है, भगवान! यह तो सन्तों के मन्त्र हैं। समझ में आया? आहाहा!

वह ज्ञान से बहिर्भूत... **जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है।** वह पराङ्मुख कहा था। उसमें वंचित कहा था, भाई! अर्थ में। पराङ्मुख (का अर्थ) वंचित किया, यहाँ बहिर्भूत कहा। अर्थात् कि यह इन्द्रिय द्वारा.... अरे! तीन लोक के नाथ को जानने में रुके, वह ज्ञान भी बहिर्मुख—बाहर है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन बातें। यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा कुछ नहीं है। अन्तर का विषय जहाँ....

आहाहा! अरे! उसे सुनने को मिले नहीं। और यह जगत की चीज़ें उल्टी, इसे सब सुनने का और जानपने का और चतुर का पुत्र होकर बैठे। नरोतमभाई! धन्धे की बातें करने बैठे तो कैसा होशियार!

एक बार कहा नहीं था? कोलाबा-कोलाबा। कोलाबा है न वह? मुम्बई। आहाहा! धड़ाधड़। यह (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। ६४ के वर्ष में दुकान से-पालेज से माल लेने गये। ६४ वाँ वर्ष, तब १८ वर्ष की उम्र थी। वहाँ कोलाबा देखने गये। मैंने कहा, चलो न, क्या करते हैं यह सब सटोरिया? एक मारवाड़ी कहे कि लिया.... दिया.... लिया.... दिया.... ऐसा करे। वहाँ कोलाबा आता है न वह क्या कहलाता है? वहाँ अमेरिका का भाव आता है। गये थे ६४ के वर्ष में। यह क्या करता है? दो... और लो... मस्तिष्क फट गया। बड़ा मूर्ख परन्तु, हों! ऐई! ऐसा होगा? तुम्हारे लड़के.... दूध पिया नहीं था? उसने वहाँ दूध पिया था। फिर नयी जमीन ली थी न पाँच सौ वार की? पाँच सौ रुपये का एक वार। पन्द्रह सौ वार क्या कहा? पन्द्रह सौ वार ली थी। यहाँ बँगला बनाना है। पाँच करोड़ रुपये। यहाँ डालना होगा कुछ लाख-दो लाख। महाराज! चरण करो। क्या है यह कहा? अर्थात् यह बँगला अच्छा हो तो मैं सुखी होऊँ!

बापू! तेरा तत्त्व रखना है ठीक या बाहर का रखना है ठीक? आहाहा! बाहर का ठीक रखने का मिथ्या प्रयास करता है, वह मूढ़ बहिरात्मा है। अन्दर का ठीक रखना, वहाँ टल जाता है, वंचित हो जाता है, ठगा जाता है। नौतमभाई! ऐसी बातें हैं। यह तो कहे कि दया पालना, दान देना, भूखे को आहार देना, प्यासे को पानी देना, रोगी को औषध देना, स्थान न हो तो उसे ओटला बँधाकर या धर्मशाला बनाकर करना, कपड़े देना। अरे! भगवान! सुन तो सही। यह बाह्य पदार्थ लेने-देने का तो तेरा अधिकार नहीं है। आहाहा! वह तो स्वतन्त्र तत्त्व है।

परन्तु यहाँ तो इतना कहते हैं, प्रभु! आहाहा! बाह्य पदार्थ को ज्ञान उस ओर ढलकर उसे देखने में रुके, तब भगवान आत्मा को देखने का बन्द हो गया। आहाहा! ऐई! कान्तिभाई! ऐसा क्या होगा? पकड़ में आये ऐसा होगा? समझ में आये ऐसा होगा? अरे! भगवान! सब केवलज्ञान पाकर अनन्त मोक्ष गये। आहाहा! भाई! तुझे तेरी

चीज़ ज्ञात न हो, ऐसा कैसे हो ? क्योंकि उसमें एक प्रमेयत्व नाम का गुण है। ज्ञेय होने का गुण है। ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात होता है। उसे जानना छोड़कर पर प्रमेय जो है, (उसे जानने में रुका)। आहाहा! समझ में आया ? अपने में एक प्रमेयत्वगुण और शक्ति है या नहीं ? उस ज्ञान द्वारा स्व को प्रमेय करना चाहिए अर्थात् आत्मज्ञान (करना चाहिए), उसे छोड़कर उसी ज्ञान द्वारा बाह्य का जानपना किया, वह बहिर्भूत तत्त्व है। आहाहा! बाहर का जानना, वह बहिर्भूत तत्त्व है। अन्तर्भूत तत्त्व नहीं।

मुमुक्षु : जानना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो जानने की लगायी है।

भगवान! कठिन पड़े ऐसा है, हों! सुना न हो और ५०-५०-, ६० वर्ष निकाले हों मूढ़पने में और उसे ऐसी बात आवे तो (ऐसा लगे), यह क्या है ? यह तो पागल लगते हैं ? बात तो सच्ची है।

'जगतडा कहे छे रे, भगतडा काला छे, जगतडा कहे छे अरे भगतडा घेला छे,
पण घेला न जाणशो रे, वस्तु में ऐ पहेला छे।'

समझ में आया ? आहाहा! ऐई! पोपटभाई! पानी उतर जाये ऐसा है यह तो सब। बात सच्ची। आहाहा!

यह चैतन्य वस्तु है न ? आत्मतत्त्व। उसे जानने से वंचित हुआ, उसके जानने से पराङ्मुख। ऐसे पराङ्मुख अर्थात् आत्मा को जानना चाहिए, उसे छोड़कर पराङ्मुख। उससे उल्टी चीज़ें जो बाहर की हैं। आहाहा! उसमें जानने को ज्ञान की पर्याय रुकी और जिसे जानने में रुकी, उसके अस्तित्व को अपना है, ऐसा उसने माना। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

वैसा होता हुआ वह (बहिरात्मा) क्या करता है ? अपनी देह को आत्मारूप मानता है.... इसका अर्थ यह कि चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु ध्रुव अनादि-अनन्त शाश्वत् वस्तु, उसका ज्ञान भूलकर, उसकी ओर का झुकाव छोड़कर, उसका ज्ञान करना चाहिए कि मैं कौन हूँ, इसका ज्ञान न करके.... आहाहा! पर के जानपने में रुका, वह बहिर्भूत, देह को ही आत्मा मानता है। अर्थात् कि यह चैतन्य जिसमें नहीं....

आहाहा! यह चैतन्य त्रिलोकनाथ सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण इदं आत्मा, वह जिसमें नहीं, उसे अपना मानता है। उसका अर्थ कि देह को ही आत्मा मानता है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, (यह) तो विश्राम का वाक्य है। आहाहा!

अर्थात् अपना शरीर, वही 'मैं हूँ'.... इसका अर्थ फिर यह अस्तित्व जो जानपना होता है पर का, वह सब वह मैं हूँ। आहाहा! **ऐसी मिथ्या मान्यता करता है।** ऐसी झूठी श्रद्धा, असत्य श्रद्धा, झूठपन को वह सेवन करता है। सत्य का सेवन उसने छोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? यह तो टीका हुई।

भावार्थ - बहिरात्मा, बाह्य इन्द्रियों द्वारा जिन मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है,... इन्द्रिय द्वार में तो मूर्तिक ज्ञात होते हैं न? इन्द्रियों द्वारा अर्थात् यहाँ उसे ही देह कह दिया। **बाह्य मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है,....** आहाहा! आँख द्वारा ऐसा जाने कि यह मूर्तिक पदार्थ है, वह ज्ञात होता है। कहीं आँख और कान द्वारा आत्मा ज्ञात होता है? आहाहा! इन्द्रियातीत, मनातीत, विकल्पातीत प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा! उसे देखने-जानने का कभी इसने प्रयत्न नहीं किया। और बाह्य के पदार्थ में देखने रुक गया। आहाहा! यह सब देखो न, नहीं बड़े घूमने निकलते हैं न? भाई! क्या कहा वह? देशाटन। तुम्हारा मनोज नहीं आया था यहाँ सूरत से? कि देशाटन करने जाता हूँ। २५-३० लाख रुपये हैं। उसे तो उसके पिता को सात पेढी में कहीं नहीं थे। परन्तु ऐई...! तुझे निवृत्ति मिली नहीं सुनने की? कहा। और यह भटकने का? परन्तु पैसा भर दिया होगा कहीं। नब्बे व्यक्ति सूरत से निकले हैं। क्या कहलाता है वह? ....कहा। भटकने के देश-देशान्तर। देश-देशान्तर देखते हैं।

मुमुक्षु : धन्धे के लिये जाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धन्धे की बात नहीं। यह तो देखने (गया)। धन्धा तो वहाँ चलता है। सूरत में दुकान बहुत बड़ी है। दो लड़के। बुद्धि समझने जैसी है। लाख, लाख, दो-दो लाख, तीन लाख आमदनी है। ऐई! तुम्हारी बात नहीं, हों! तुम्हारे लड़के को दो-तीन लाख में पार नहीं आवे। उसे पाँच करोड़ रुपये.... आमदनी अधिक होती होगी, पाप की। आहाहा!

कहते हैं, **बाह्य इन्द्रियों द्वारा जिन मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है,....** ग्रहण करने का अर्थ जानता है। पकड़े कहाँ? पकड़े क्या, जड़ पकड़ाय आत्मा में? शरीर पकड़ाता है जड़? उस सम्बन्धी का ज्ञान जानता है। इस शरीर का जानना, पैसे का, स्त्री का, पुत्र का, परिवार का। जो चीज़ पर है, जिस चीज़ में स्वयं नहीं और जो चीज़ स्वयं है, उसमें वह चीज़ नहीं। लॉजिक से तो बात चलती है, भाई! और सादी भाषा है। भाव भले ऊँचे हों। परन्तु भाषा में कोई महत्ता नहीं है। बहुत सूक्ष्म यह संस्कृत और व्याकरण और अमुक और अमुक। आहाहा! भगवान! तू तो सरल सीधा है। परन्तु अब उसे छोड़ दिया, खबर नहीं होती। आहाहा!

बाह्य मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है, उन्हें मोहवश अपना मानता है। जो ज्ञान में चीज़ ज्ञात हुई न, वह मेरा है, ऐसा मानता है। आहाहा! सौ मनुष्य हों न ऐसे। उसमें एक लकड़ा हो और ९९ दूसरे के लाईन से खड़े हों। ऐसे वास्तव में तो वह देखता है, जानता है। उसमें 'यह मेरा' यह कहाँ से आया?

मुमुक्षु : उसके घर में जन्मा है इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ घर इसका था? यह सौ की ऐसे लाईन खड़ी हो तो उसमें से.... वास्तव में तो जैसे दूसरों को-९९ को जानता है, वैसे इसे भी बाह्यरूप से जानता है। परन्तु ऐसा जानते हुए उसे यह मेरा लड़का। यह कैसे? बापू? कहाँ से आया? ऐसा कहाँ से निकाला? जानपने में तो सौ को ज्ञेयरूप से जानता था। आत्मा का स्वभाव जानने का है, ज्ञेयरूप से जानता था। उसमें और यह मेरा, यह कहाँ से आया? मिथ्या भ्रम अज्ञानी का मूढ़ता के भाव में यह मेरा है, ऐसा इसने माना है। ऐ.... पोपटभाई! इसका लड़का तो यह ले आया है। यह सब अक्षरों की मशीन, हसमुख। हसमुख गया था न इटली। वहाँ से मशीन लाया। हिन्दुस्तान में पहली-पहली। इस मशीन से अक्षर हुए थे। यह लाया था। इनका बड़ा लड़का। छह लड़के हैं न, बीस हजार का खर्च हुआ था। पन्द्रह हजार का.... २९ हजार की मशीन, ६९ हजार में यहाँ पड़ी है। इनका लड़का.... अपने लिये लाया....

मुमुक्षु : अभी तो इनकार करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय बाह्य पदार्थ को जानने का ज्ञान। यह है, ऐसा। आयेगा, सोनगढ़ आयेगा। परन्तु उसके बाहर के ज्ञान में रुकने से स्व का ज्ञान तो वंचित हो गया। आहाहा! गजब बात है, बापू! यह तो एक दृष्टान्त। दूसरे सबको ऐसा है न! आहाहा!

उन्हें मोहवश अपना मानता है। उसको अन्तर के आत्मतत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं;.... आहाहा! यह बहिर् और अन्तर वस्तु क्या है, उसकी इसे कुछ खबर नहीं। **इस कारण वह अपने शरीर को ही, आत्मा समझता है....** इसलिए बाह्य चीज़ को ही अपनी मानता है। **शरीर, मन, वाणी की क्रिया...** देखो! अब थोड़ा लम्बा किया। यह शरीर की क्रिया से ऐसे... ऐसे.... हो, वह मेरी। क्योंकि इसके ज्ञान में वह आया है। स्वयं है, उसके जानने का ज्ञान नहीं और यह चलने की क्रिया हो, खाने की क्रिया हो, बोलने की क्रिया हो, वह सब मेरी। जड़ की क्रिया मेरी। आहाहा! नामा लिखने में होशियार हो। वह तो जड़ की क्रिया है। कलम जड़ है, अक्षर जड़ है, वह अक्षर के वणांक पड़े हैं, वे जड़ के हैं।

यहाँ तो इतना कहना है कि उस बाह्य पदार्थ का जहाँ देखने का झुकाव है, उसे यह जानने में आने पर यह जो मुझे जानने में आयी, वह चीज़ मेरी न हो तो जानने में कैसे आवे? आहाहा! वह मेरी चीज़ है, ऐसा इसने माना। मैंने अक्षर लिखे, नामा मोती के दाने जैसा नहीं कहते सब? होशियार व्यक्ति हो न? कहे कि मोती के दाने जैसे अक्षर लिखे। गोलमरोड़। गोलमरोड़। सुन न अब। गोलमरोड़ तो जड़ की क्रिया है। उसे जानने में रुका हुआ वहाँ माने कि यह मेरे हैं। मेरे अक्षर हैं। यह कागज में नहीं (होता)? सबके अक्षर अलग-अलग प्रकार के होते हैं। नाम न लिखा हो तो उन अक्षरों द्वारा पहिचाना जाता है। यह अक्षर इसके हैं, यह अक्षर इनके हैं। लड़के के अक्षर हो, स्त्री के अक्षर हों, पति के अक्षर हों, उसमें पति होशियार हो, धणा-धणी ढ भी हो। परन्तु वह तो जड़ शब्द हैं। उन्हें जानते हुए स्वयं मूर्त को अपना मानता है।

अरे! वास्तव में तो बाह्य पदार्थ को जानने का ज्ञान ही मूर्त है। मूर्त का निमित्त है, उसका ज्ञान वह मूर्त है। आहाहा! प्रवचनसार में आता है न? समझ में आया?

कहो, ऐसी बात है। बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! तुझे न जँचे तो वह विपरीत है, ऐसा नहीं मानना। मार्ग का स्वरूप ही ऐसा है। तेरी परीक्षा जब देनी हो तो इस प्रकार से परीक्षा दी जायेगी। समझ में आया? आहाहा!

आत्मतत्त्व का.... अन्दर के आत्मतत्त्व का। यह बाह्य का जानने में ऐसा रुका है। आहाहा! उसमें अभी तो होता है न? तुम्हारे कारखाने बहुत बढ़े। पच्चीस हजार हुए, वहाँ कारखाना करते हैं, कहे। बहुत सुना है। वडोदरा में कारखाना, मुम्बई में कारखाना, तुम्हारे हुए है कहीं अहमदाबाद में नहीं? कोई कहता था, हें, मुम्बई में! अहमदाबाद आये है न लड़के। देखने आये थे। यहाँ कारखाना किया है। पैसे हुए हों तो डालना कहाँ? पचास हजार यहाँ डालो, लाख-दो लाख यहाँ डालो। मनुभाई! इसे कुछ कारखाना है या नहीं?

मुमुक्षु : चश्मे की फ्रेम।

पूज्य गुरुदेवश्री : चश्मे की फ्रेम का कारखाना है, लो। ऐसा तो बहुत सुनते हैं मुम्बई में। यह हमारे भूपेन्द्र। इसका कारखाना है न यह? ....भूपेन्द्र... आये तब ले गया था। किशोर ले गया था वहाँ। यह रंग की धमाल.... धमाल.... थी। भूपेन्द्र डाईंग। किशोर देखने ले गया था। अरे! यह सब धूल है। पैसा बहुत पैदा हो मने कि हम कुछ कमाते हैं और अपने कुछ बढ़े हैं। पर के जानने में रुके हुए ज्ञान में बढ़ा, वह मूढ़ है। पर मेरा माना, वहाँ रुका, वह मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। अरे! वर छोड़कर बारात जोड़ दी। उस बारात को बारात नहीं कहा जाता। वह तो मनुष्यों का झुण्ड कहलाता है। वर हो तो लोगों के झुण्ड को बारात कहा जाता है। उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान यदि हो तो पर का ज्ञान व्यवहार से है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु जहाँ आत्मा का ज्ञान नहीं और अकेला पर का ज्ञान है, वह वर बिना की बारात जोड़ी है। उसे बारात नहीं कहा जाता। वह लोगों का झुण्ड इकट्ठा हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु ऐसी है, भाई! इसे गुलाँट खाये बिना तत्त्व हाथ आवे, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। जो दशा बाह्य में झुकी हुई है। ऐसा होता है अन्दर.... उस दशा को अन्दर झुकाये बिना इसे तत्त्वज्ञान नहीं होता। आहाहा! यह तो दूसरे प्रकार से बात की है। ऐसे झुका हुआ है

स्वसन्मुख से विमुख हो गया है और पर से सन्मुखता है, उससे मुख (फिराकर) स्वसन्मुख करना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान और धर्म की दशा कहा जाता है। समझ में आया? उसे अपने .... समझता है।

अर्थात् शरीर,.... यह जड़-मिट्टी-धूल **मन,....** यहाँ मन विचारने में एक मन है। **और वाणी....** यह जड़। आवाज उठती है, वह जड़ की है। वह आत्मा की नहीं, आत्मा में नहीं, आत्मा से नहीं। आहाहा! वह **वाणी की क्रिया....** क्रिया अर्थात् बदलना, परिणति होना। भाषा है न। **जो जड़ की क्रिया है, उन्हें मैं कर सकता हूँ....** उसे स्वयं कर सकता है, ऐसा माननेवाला। **उनका स्वामी हूँ—ऐसा मानता है।** आहाहा! वह जानने में रुके हुए ज्ञान को.... आहाहा! यह वाणी जड़ है, यह तो आवाज धूल है। आहाहा! इसमें (टेप में) उतरती है, वह जड़ उतरता है या चैतन्य है? यह उतरता नहीं। यह तो निमित्त है और यह भिन्न होता है। आहाहा! इस वाणी की, मन की क्रिया जड़ की क्रिया, उसे स्वयं कर सकता है और उसका स्वयं स्वामी है, ऐसा मानता है, वह आत्मतत्त्व के भान से भूल गया है। अपनी जाति को भूलकर पर जाति की क्रिया को अपनी मानकर भटक रहा है। कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जीव, त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। भगवान तो चैतन्यस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म, प्रज्ञाब्रह्म। प्रज्ञा और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। वह ज्ञान और आनन्द का कन्द आत्मा है। वह बाहर की चीज़ को जानते हुए उसे हर्ष आता है, वह बाहर में उसने आनन्द माना है। वह आनन्द रह गया अन्दर। समझ में आया? कहते हैं, **त्रिकाली....** यहाँ तो ऐसा लेना है न। एक समय की पर्यायवाला नहीं लेना। यहाँ तो पूरा लेना है। त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है। वस्तु त्रिकाल है, नित्य है, अविनाशी प्रभु आत्मा है। आत्मा नया नहीं होता, आत्मा नाश नहीं पाता। और अविनाशी भगवान आत्मा है, वह त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। उसका स्वरूप ज्ञान है, ऐसा कहना है। त्रिकाली है परन्तु उसका स्वरूप ज्ञान है। जानना.... जानना.... जानना.... प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप है। आहाहा!

उसको बहिरात्मा अज्ञानवश नहीं जानता.... देखा! आहाहा! त्रिकाली शाश्वत् ज्ञानस्वरूप है, उसे जानता नहीं। उसके परिचय में उसमें आता नहीं अन्दर वस्तु में।

आहाहा! **अज्ञानवश नहीं जानता और बाह्य- इन्द्रियगोचर पदार्थ,....** इन्द्रियगम्य जाननेयोग्य पदार्थ यह मिट्टी, जड़, धूल, शरीर, वाणी, पैसा, इज्जत सब। आहाहा! **जो मात्र ज्ञेयरूप हैं,....** वे मात्र परज्ञेयरूप हैं। **उनमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके,...** यह मुझे ठीक है, यह मुझे अठीक है। जाननेयोग्य वह तो है। ज्ञेय है। ज्ञान में जानने (योग्य ज्ञेय है)। उसके दो भाग कैसे किये? वह पदार्थ तो जाननेयोग्य है। यह ज्ञान जाने अपने में रहकर। उसके बदले जाननेयोग्य पदार्थ के दो भाग किये तूने कि यह इष्ट है और अनिष्ट है, यह बुद्धि मिथ्यात्व और पाखण्ड है। यह तेरे तत्त्व की तुझे खबर नहीं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)